Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 5 | ISSUE : 12 | DECEMBER 2019

भारतीय मूल्य प्रणाली में सतत विकासः एक विवेचन

अमित कुमार [1]

[1] सहायक आचार्य (भूगोल), राजकीय महाविद्यालय, भादरा, जिला हनुमानगढ़, राजस्थान

ABSTRACT:

इस समय संपूर्ण विश्व पर्यावरण संकट से ग्रस्त है। मनुष्य जनित पर्यावरणीय समस्याओं ने जीव–जगत् को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। अतः भावी पीढ़ियों के हितों को दृष्टिगत रखते हुए पिछले कुछ दशकों से सतत विकास पर चिंतन किया जाने लगा है। परंतु यदि हम भारतीय संदर्भ में देखें तो यहाँ सभ्यता के उदयकाल से ही सतत विकास संबंधी दृष्टिकोण की झलक मिलती है। भारतीय मूल्य प्रणाली मनुष्य को प्रकृति या जगत् की वृहत्तर योजना का एक भाग मानते हुए मानव–प्रकृति सहकार और सह–अस्तित्व पर बल देती है। भारत में मनुष्य प्रारंभ से ही पर्यावरण और इसके तत्त्वों के महत्त्व से अवगत था तथा उसने प्रकृति के साथ अपना तादात्म्य बनाये रखा। वेदों से लेकर अद्यावधिपर्यंत दर्शन एवं साहित्य में सतत विकास संबंधी मूल्यों को बराबर महत्त्व दिया गया है। कतिपय आधुनिक विद्वानों ने भी सतत विकास संबंधी पर्यावरणीय मूल्यों पर चिंतन किया है। पारंपरिक भारतीय जीवनशैली सतत विकास की पर्याय रही है तथा भावी पीढ़ियों के हितों के दृष्टिगत संसाधनों के विवेकपूर्ण उपभोग पर आधारित रही है। यहाँ के पारंपरिक ज्ञान एवं लोक व्यवहार में सतत विकास प्रतिबिंबित हुआ है। परंतु कालांतर में वैश्विक संदर्भ में इन सब व्यवस्थाओं में संकुचन आता गया तथा आधुनिक युग में व्यक्तिवादी मूल्यों पर आधारित उपभोक्तावादी संस्कृति से पारिस्थितिक संतुलन चरमराने लगा है। इस आलोक में भारतीय मूल्य प्रणाली में निहित सतत विकास संबंधी मूल्यों को व्यावहारिक जीवन में आत्मसात् करने से पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सकारात्मक दृष्टि प्राप्त होगी तथा हम अपने वास्तविक हितों की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

KEYWORDS:

भारतीय मूल्य प्रणाली, सतत विकास, पर्यावरण संकट, संसाधन विदोहन, आर्थिक विकास, जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण, नगरीकरण, बाज़ारीकरण, पर्यावरण क्षरण, स्वतः नियामक युक्ति, पर्यावरण, सतत विकास लक्ष्य, भारतीय संस्कृति, पर्यावरणीय मूल्य, पर्यावरणीय नैतिकता, प्रकृति, भारतीय दर्शन, पर्यावरण चिंतन, पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक तत्त्व, पंचमहाभूत, पारिस्थितिक एवं पर्यावरण संतुलन, ऋत, द्यावा–पृथिवी, संसाधन, खनन, वैदिक वाङ्मय, आरण्यक संस्कृति, पारिस्थितिक तंत्र, मध्यम मार्ग, पारिस्थितिकी, अर्थव्यवस्था, पारिस्थितिक नारीवाद, ओरण, गोचर, वन संरक्षण एवं प्रबंधन, प्राकृतिक चिकित्सा, भारतीय ज्ञान परंपरा, पर्यावरण दर्शन, व्यक्तिवादी मूल्य, उपभोक्तावादी संस्कृति।

परिचय

इस समय संपूर्ण विश्व पर्यावरण संकट से ग्रस्त है। मनुष्य द्वारा अविवेकपूर्ण संसाधन विदोहन और प्रकृति विरुद्ध आर्थिक विकास, जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा बाज़ारीकरण जनित पर्यावरणीय समस्याओं ने जीव–जगत् को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। पर्यावरण का क्षरण इस सीमा तक हो चुका है कि उसे प्रकृति की स्वतः नियामक युक्ति से ठीक कर पाना दुष्कर हो गया है। वस्तुतः हमारी अदूरदर्शिता से भावी पीढ़ियों के अस्तित्व के समक्ष चुनौती खड़ी हो गयी है। अतः भावी पीढ़ियों के हितों को दृष्टिगत रखते हुए पिछले कुछ दशकों से सतत विकास और पर्यावरणीय मूल्यों पर चिंतन किया जाने लगा है।

विवेचन

सर्वप्रथम 1980 में आईयूसीएन के *वर्ल्ड कन्जर्वेशन स्ट्रैटजी* नामक प्रतिवेदन में 'सतत विकास' शब्दावली प्रयुक्त हुई। परंतु इस अवधारणा का व्यापक प्रचलन 1987 में संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग के *ऑवर कॉमन फ्यूचर* प्रतिवेदन, जिसे *ब्रंटलैंड प्रतिवेदन* के नाम से भी जाना जाता है, के प्रकाशन के साथ हुआ। इसमें सतत विकास को परिभाषित करते हुए कहा गया कि, ''सतत विकास वह विकास है जो भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता से समझौता किये बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है।'' सितंबर, 2015 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने *ट्रॉंसफॉर्मिंग अवर वर्ल्ड: द 2030 एजेंडा फॉर सस्टेनेबल डवलपमेंट* नामक दस्तावेज़ को अंगीकृत किया, जिसमें 17 सतत विकास लक्ष्य (एसडीजी) एवं 169 संबद्ध प्रयोजन (टार्गेट्स) समाहित थे। सभी के लिये एक सतत, खुशहाल एवं बेहतर भविष्य की प्राप्ति के आधार ये वैश्विक लक्ष्य 1 जनवरी, 2016 से प्रभावी हुए। परंतु यदि हम भारतीय संदर्भ में देखें तो यहाँ सभ्यता के उदयकाल से ही सतत विकास संबंधी दृष्टिकोण की झलक मिलती है।

भारतीय संस्कृति सदैव से ही मूल्यों की संवाहक रही है तथा भारतीय मूल्य प्रणाली में पर्यावरणीय मूल्यों एवं नैतिकता का विशिष्ट स्थान रहा है। भारतीय मूल्य प्रणाली मनुष्य को प्रकृति या जगत् की वृहत्तर योजना का एक भाग मानते हुए मानव–प्रकृति सहकार और सह–अस्तित्व पर बल देती है। भारतीय दर्शन में पर्यावरण चिंतन व संरक्षण तथा सतत विकास की सुदीर्घ एवं समृद्ध परंपरा परिलक्षित होती है। प्रकृति पूजा, प्राकृतिक तत्त्वों की पवित्रता व निर्मलता, जीवों के प्रति करुणा, प्राणिमात्र का कल्याण, त्याग के साथ उपभोग आदि भारतीय संस्कृति के मूल में रहे हैं। भारत में मनुष्य प्रारंभ से ही पर्यावरण और इसके तत्त्वों के महत्त्व से अवगत था तथा उसने प्रकृति के साथ अपना तादात्म्य बनाये रखा। जगत् के मूलाधार– पंचमहाभूतों, यथा क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा की शुद्धता पर बल दिया गया ताकि पारिस्थितिक एवं पर्यावरणीय संतुलन न बिगड़े।

वेदों से लेकर अद्यावधिपर्यंत दर्शन एवं साहित्य में सतत विकास संबंधी मूल्यों को बराबर महत्त्व दिया गया है। वैदिक मतानुसार विश्व ऋत अर्थात् प्राकृतिक व्यवस्था के नियमाधीन संचालित है। प्रकृतिगत दैवीय शक्तियों के व्रत अर्थात् नियम सर्वोच्च एवं अटल हैं। विवेकी या अविवेकी जन, द्यावा–पृथिवी और द्रोह–रहित उपदेशक कोई भी इनका उल्लंघन नहीं कर सकता। अचल पर्वत भी इन्हें नहीं झुका सकते। अतः मनुष्य से यह अपेक्षा की गयी है कि वह प्रकृतिगत दैवी नियमों की मर्यादा में रहकर इनके अनुरूप आचरण करे तथा प्रकृति के दिव्य संतुलन को न बिगाड़े –

''न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः।।''[1]

वेदों में 'रक्षायै प्रकृतिं पातु लोक' कहकर लोकरक्षण हेतु प्रकृति की रक्षा करने का आह्वान किया गया है। 'अवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी'[2] अर्थात् जो द्यावा–पृथिवी हमारा रक्षण करते हैं, उनके रक्षण की कामना की गयी है। मानव–प्रकृति के पारस्परिक प्रगाढ़ संबंधों की भावना से ओत–प्रोत ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''[3] की सनातन दृष्टि इंगित करती है कि मनुष्य का संपूर्ण जीवन पृथ्वी के संसाधनों पर निर्भर है। चूँकि पृथ्वी और जल (नदियों) दोनों से वनस्पतियों एवं पशुओं का संपोषण होता था, इसीलिये इन्हें माता का दर्ज़ा दिया गया[4]। पर्यावरणीय संतुलन को दृष्टिगत रखते हुए कहा गया है कि जब मानव भूमि के खननादि से खनिज, वनस्पति, अन्न इत्यादि पदार्थ प्राप्त करने का प्रयास करे तो इसकी क्षतिपूर्ति भी आवश्यक रूप से करे। इससे पृथ्वी के मर्म स्थलों पर आघात न हो तथा भूमि की उर्वरता को हानि न पहुँचे।[5] वैदिक वाङ्मय में सतत विकास संबंधी दृष्टिकोण के श्रेष्ठ मंत्र ''तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्''[6] अर्थात् जो त्याग करते हैं वे ही भोग पाते हैं, किसी वस्तु का लोभ मत करो का आदर्श हमारे मनीषियों ने सबके समक्ष रखा। पारिस्थितिक संतुलन कायम रखने के लिये यह आवश्यक है कि हम प्रकृति से जितना लें, उतना ही प्रकृति को लौटायें। पर्यावरण में अनेक संसाधन ऐसी प्रकृति के हैं कि उन्हें एक बार उपयोग में लेने के पश्चात् उनका पुनर्स्थापन संभव नहीं है, अतः उनका संरक्षण आवश्यक है। वेदों में स्पष्टतः कहा गया है कि यह द्यौ, भूमि, अंतरिक्ष में उत्पन्न होने वाली सृष्टियाँ, जल इत्यादि एक बार ही उत्पन्न होता है, पुनः पुनः नहीं[7]।

वैदिक साहित्य में पर्यावरण के विभिन्न तत्त्वों के संरक्षण को भी निरूपित किया गया है। 'शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु'[8] अर्थात् स्वस्थ शरीर के लिये जल की शुद्धता को बनाये रखना परमावश्यक माना गया है। वृक्ष भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। इनके इर्द–गिर्द ऋषि–मुनियों ने अपने आश्रमों व गुरुकुलों को स्थापित किया। आरण्यक संस्कृति से सराबोर अनेक गौरव ग्रंथ रचे गये। वेदों में वन संरक्षण एवं संवर्धन के अनेक उद्धरण मिलते हैं। पादपों ही नहीं अपितु औषधियुक्त पादपों के संवर्धन को भी बराबर महत्त्व

मिला है। 'वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्'[9] अर्थात् वन में वनस्पति को स्थापित करो कहकर पारिस्थितिक तंत्र में इनकी अपरिहार्यता को व्यक्त किया गया है। 'अघ्न्या.....यजमानस्य पशून् पाहि'[10] अर्थात् पशु जो हिंसा करने योग्य नहीं हैं, की निरंतर रक्षा कीजिए का संदेश देकर जीवों के संरक्षण पर बल दिया गया है। ब्राह्मण ग्रंथों में भी 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' अर्थात् किसी भी जीव के प्रति हिंसा न करने का निर्देश दिया गया है।

मत्स्य पुराण में एक वृक्ष को दस पुत्रों के बराबर माना गया है। *स्कन्ध पुराण* में यज्ञादि के अलावा वृक्षों को काटना निंदनीय माना गया है, विशेषतः वर्षा ऋतु में तो ऐसा करना सर्वथा वर्जनीय है। *रामायण* के प्रमुख पात्र श्रीराम वन, वन्यजीवों, पक्षियों एवं आश्रमों की रक्षा हेतु समर्पित हैं। भरत भी पर्यावरण संरक्षण हेतु संवेदनशील हैं। जब वे ऋषि के आश्रम में जाते हैं तो सेना को साथ नहीं ले जाते हैं ताकि आश्रम के वृक्षों, भूमि और जल को क्षति न पहुँचे[11]। *महाभारत* में मृत्यु शय्या पर आसीन भीष्म पितामह वृक्षारोपण का महत्त्व बताते हैं[12]। *मनुस्मृति* में अपवित्र पदार्थों को जल में डालना निषिद्ध किया गया है।

जैन एवं बौद्ध मतों में जीवों के प्रति हिंसा को वर्जित कर पशुओं एवं वन्यजीवों की सुरक्षा का आह्वान किया गया है। प्राचीनतम बौद्ध ग्रंथ *सुत्तनिपात* में गाय को भोजन, रूप एवं सुख देने वाली (अन्नदा वन्नदा सुखदा) कहा गया है और इसी कारण उसकी रक्षा करने का उपदेश दिया गया है[13]। गौतम बुद्ध अतिशय भोग और अतिशय त्याग के बीच का 'मध्यम मार्ग' बताते हैं।

तुलसीदास 'तरु काटे अपराधू' अर्थात् वृक्ष काटना अपराध है कहकर वृक्षों के संरक्षण के प्रति सजगता व्यक्त करते हैं। सीता–राम विवाहोपरांत अयोध्या में वृक्षारोपण किया गया– ''सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला।।''[14]। *श्रीरामचरितमानस* में सीता एवं लक्ष्मण द्वारा लगाये गये तुलसी के विविध पौधों का भी प्रसंग मिलता है– ''तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए।।''[15]। वृक्षों से सदैव पुष्पित–पल्लवित वनों में स्वाभाविक वैर भाव रखने वाले पशु–पक्षियों का साहचर्य पारिस्थितिक तंत्र में सबलता को व्यक्त करता है –

''फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।''[16]

रहीम पानी की महत्ता को इंगित करते हुए कहते हैं– ''रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून''।

कतिपय आधुनिक विद्वानों ने भी सतत विकास संबंधी पर्यावरणीय मूल्यों पर चिंतन किया है। महात्मा गाँधी संसाधनों को संदर्भित कर कहते हैं कि ''विश्व के पास प्रत्येक की आवश्यकता की पूर्ति हेतु पर्याप्त है, परंतु प्रत्येक के लोभ के लिये पर्याप्त नहीं''। पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा ने पारिस्थितिकी को स्थाई अर्थव्यवस्था माना है। वंदना शिवा पारिस्थितिक नारीवाद के प्रति सचेत हैं और कहती हैं, ''प्रकृति और नारी में समानता है''। वस्तुतः दोनों ही पोषण करती हैं। भारतीय नारियाँ प्रकृति की उपासक एवं उसके सन्निकट रही हैं। वे भूमि, नदियों, वृक्षों, जल स्रोतों, यथा कुओं, वापिकाओं आदि की पूजा विविध पद्धतियों से करती आयी हैं। एम. एस. स्वामीनाथन मनुष्य को सावचेत करते हुए कहते हैं, ''यदि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण सही नहीं होगा तो कुछ भी सही नहीं होगा''।

पारंपरिक भारतीय जीवनशैली सतत विकास की पर्याय रही है तथा भावी पीढ़ियों के हितों के दृष्टिगत संसाधनों के विवेकपूर्ण उपभोग पर आधारित रही है। यहाँ के पारंपरिक ज्ञान एवं लोक व्यवहार में सतत विकास प्रतिबिंबित हुआ है। 'ओरण' (या पवित्र वन– किसी देवस्थान से जुड़ा संरक्षित वन क्षेत्र) और 'गोचर' (किसी धार्मिक स्थल से संलग्न चरागाह) के रूप में भूमि सुरक्षित रखने की परंपरा वन संरक्षण एवं प्रबंधन का अनुपम उदाहरण है, जिन पर मनुष्य सहित पशु एवं वन्यजीव निर्भर रहते आये हैं। यहाँ मनुष्य द्वारा वृक्षों को बाँहों में भरकर उन्हें बचाने के उदाहरण मिलते हैं। चिरकाल से यहाँ अपनायी जा रही प्राकृतिक चिकित्सा एक उपचार पद्धति ही नहीं वरन् एक जीवन दर्शन भी है।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं मूल्यों में सतत विकास संबंधी पहलुओं को पर्याप्त महत्त्व मिला है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्'[17] की भावना से अनुप्राणित भारतीय पर्यावरण दर्शन प्रकृति और प्राणियों के परस्पर आत्मीय संबंधों का पोषक रहा है। परंतु कालांतर में वैश्विक संदर्भ में इन सब व्यवस्थाओं में संकुचन आता गया तथा आधुनिक युग में व्यक्तिवादी मूल्यों पर आधारित उपभोक्तावादी संस्कृति से पारिस्थितिक संतुलन चरमराने लगा है और भावी पीढ़ियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। इस आलोक में भारतीय मूल्य प्रणाली में निहित सतत विकास संबंधी मूल्यों को व्यावहारिक जीवन में आत्मसात् करने से पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सकारात्मक दृष्टि प्राप्त होगी तथा हम अपने वास्तविक हितों की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

REFERENCES

1. *ऋग्वेद* 3 / 56 / 1
2. *यजुर्वेद* 2 / 9
3. *अथर्ववेद* 12 / 1 / 12
4. *प्रारंभिक भारत का परिचय* – रामशरण शर्मा, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2009, पृ. 44
5. *अथर्ववेद* 12 / 1 / 35
6. *यजुर्वेद* 40 / 1 (*ईशावास्योपनिषद्* 1 / 1)
7. *ऋग्वेद* 6 / 48 / 22
8. *अथर्ववेद* 12 / 1 / 30
9. *ऋग्वेद* 10 / 101 / 11
10. *यजुर्वेद* 1 / 1
11. *रामायण* – वाल्मीकि 2 / 91 / 9
12. *महाभारत* – वेदव्यास (अनुशासन पर्व) 13 / 58 / 26, 27
13. *प्रारंभिक भारत का परिचय* – रामशरण शर्मा, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2009, पृ. 144
14. *श्रीरामचरितमानस* – तुलसीदास (बालकाण्ड) 1 / 343 / 4
15. *श्रीरामचरितमानस* – तुलसीदास (अयोध्याकाण्ड) 2 / 236 / 4
16. *श्रीरामचरितमानस* – तुलसीदास (उत्तरकाण्ड) 7 / 22 / 1
17. *महोपनिषद्* 4 / 71